समकालीन हिन्दी कविता में मानवाधिकार: चेतना, प्रतिरोध और समकालीन संवेदनाएँ

Dr. T. A. Anand
Associate Professor & Research Guide
PG and Research Department of Hindi
Government Arts and Science College, Calicut
E-mail: anandhindi@gmail.com

प्रस्तावना

मानवाधिकार आधुनिक मानव सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक हैं। जीवन, स्वतंत्रता, समानता, गरिमा और न्याय जैसे मूल्य मानवाधिकारों की आधारभूमि हैं। साहित्य और मानवाधिकार का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है, क्योंकि साहित्य समाज की संवेदनाओं, संघर्षों और अन्याय के अनुभवों को अभिव्यक्ति देता है। साहित्य न केवल मानवाधिकारों के उल्लंघन को उजागर करता है, बल्कि प्रतिरोध, चेतना और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी बनता है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित, स्त्री, आदिवासी तथा LGBTQ+ समुदायों के संघर्षों को प्रमुखता से अभिव्यक्त किया गया है। धर्मेश, कुमार अम्बुज और जसिंता केरकेट्टा जैसे रचनाकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से मानवाधिकार, न्याय, अस्मिता, प्रेम, पर्यावरण और अस्तित्व के प्रश्नों को गंभीरता से उठाया है। प्रस्तुत आलेख में मानवाधिकारों के विभिन्न रूपों, साहित्य और मानवाधिकार के परस्पर संबंध तथा चयनित कविताओं के

माध्यम से मानवाधिकार चेतना का विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द (Key Words): मानवाधिकार, समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, अस्मिता, प्रतिरोध, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, LGBTQ+ अधिकार, पर्यावरण चेतना, प्रेम की अभिव्यक्ति

मानवाधिकार

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो सभी मनुष्यों को प्राप्त हैं, चाहे उनकी जाति, लिंग, राष्ट्रीयता, नस्ल, भाषा, धर्म या कोई अन्य स्थिति कुछ भी हो। मानवाधिकारों में जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, गुलामी और यातना से मुक्ति का अधिकार, मत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, काम और शिक्षा का अधिकार आदि शामिल हैं। ये सभी अधिकार बिना किसी भेदभाव के सभी को प्राप्त हैं।[1]

मानवाधिकारों को विभिन्न आधारों पर कई रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. नागरिक (Civil) अधिकार - ये अधिकार व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सुरक्षा से जुड़े होते हैं। जीवन का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विचार और धर्म की स्वतंत्रता, समानता का अधिकार। ये अधिकार व्यक्ति को राज्य के अत्याचार और अन्याय से बचाते हैं।

2. राजनीतिक (Political) अधिकार - ये अधिकार व्यक्ति को शासन और राजनीति में भाग लेने का अवसर देते हैं। मतदान का अधिकार, चुनाव लड़ने का अधिकार, सरकार की आलोचना करने का अधिकार। ये अधिकार लोकतंत्र को सशक्त बनाते हैं।

3. आर्थिक (Economic) अधिकार - ये अधिकार व्यक्ति की आजीविका और आर्थिक सुरक्षा से संबंधित हैं। काम करने का अधिकार, उचित वेतन का अधिकार, संपत्ति का अधिकार। ये अधिकार व्यक्ति को सम्मानजनक जीवन जीने में सहायक होते हैं।

4. सामाजिक (Social) अधिकार- ये अधिकार समाज में व्यक्ति के कल्याण

और सुरक्षा से जुड़े हैं।

शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य सेवाओं का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार। ये अधिकार सामाजिक समानता और न्याय को सुनिश्चित करते हैं।

5. सांस्कृतिक (Cultural) अधिकार - ये अधिकार व्यक्ति को अपनी संस्कृति, भाषा और परंपराओं को बनाए रखने की स्वतंत्रता देते हैं। अपनी भाषा बोलने का अधिकार, सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार। ये अधिकार विविधता और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा करते हैं।

6. समूहिक या सामूहिक (Collective) अधिकार - ये अधिकार किसी समूह या समुदाय के लिए होते हैं। आत्मनिर्णय का अधिकार, विकास का अधिकार, पर्यावरण संरक्षण का अधिकार । ये अधिकार समुदायों के समग्र विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं।

7. विशेष मानवाधिकार (Rights of Specific Groups) - कुछ वर्गों के लिए विशेष अधिकार निर्धारित किए गए हैं, जैसे– महिलाओं के अधिकार, बच्चों के अधिकार, दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार, LGBTQ+ समुदाय के अधिकार। इनका उद्देश्य कमजोर वर्गों को समान अवसर और सुरक्षा प्रदान करना है।

मानवाधिकारों के ये सभी रूप एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और सभी का उद्देश्य एक ही है–मानव गरिमा की रक्षा और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना। किसी भी अधिकार की अनदेखी, अन्य अधिकारों को भी प्रभावित करती है, इसलिए सभी मानवाधिकारों का समान रूप से सम्मान आवश्यक है।

साहित्य और मानवाधिकार का परस्पर संबंध

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि उसकी चेतना, संवेदना और संघर्षों का सशक्त माध्यम भी है। मानवाधिकार जहाँ व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की रक्षा का आधार प्रदान करते हैं, वहीं साहित्य इन अधिकारों के उल्लंघन, संघर्ष और पुनर्स्थापना को अभिव्यक्ति देता है।

1. साहित्य: मानवाधिकारों की अभिव्यक्ति का माध्यम

साहित्य में व्यक्ति और समाज के अनुभव, पीड़ा, अन्याय और संघर्षों का चित्रण होता है। यह उन आवाज़ों को मंच देता है जो अक्सर हाशिए पर होती हैं–जैसे दलित, स्त्री, आदिवासी और LGBTQ+ समुदाय।

उदाहरण के लिए, प्रेमचंद की कहानियाँ सामाजिक अन्याय और शोषण को उजागर करती हैं, जो मानवाधिकार के प्रश्नों को केंद्र में लाती हैं।[2]

2. साहित्य: मानवाधिकार चेतना का विकास

साहित्य पाठकों में संवेदनशीलता और जागरूकता पैदा करता है। यह अन्याय के प्रति प्रतिरोध की भावना जगाता है और समाज में परिवर्तन की प्रेरणा देता है।

महादेवी वर्मा और अमृता प्रीतम की रचनाएँ स्त्री अधिकारों और अस्मिता की चेतना को सशक्त करती हैं।[3]

3. साहित्य: दमन और प्रतिरोध का दस्तावेज़

साहित्य इतिहास के उन पन्नों को संजोता है जहाँ मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है। यह उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध का दस्तावेज़ बन जाता है।

दलित साहित्य, विशेष रूप से ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', सामाजिक भेदभाव और मानवाधिकार हनन का सशक्त उदाहरण है।[4]

4. मानवाधिकार: साहित्य की वैचारिक आधारभूमि

मानवाधिकारों की अवधारणा साहित्य को एक नैतिक और वैचारिक दिशा देती है। स्वतंत्रता, समानता, न्याय और गरिमा जैसे मूल्य साहित्य के मूल तत्व बन जाते हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर United Nations द्वारा 1948 में घोषित Universal Declaration of Human Rights (UDHR) ने भी साहित्यकारों को मानवाधिकार विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया।

5. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन

साहित्य समाज में परिवर्तन का सशक्त उपकरण है। यह न केवल समस्याओं को उजागर करता है, बल्कि वैकल्पिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है।

हरिशंकर परसाई और मुक्तिबोध की रचनाएँ सामाजिक अन्याय के खिलाफ तीखा व्यंग्य और प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं।[5]

6. समकालीन संदर्भ

आज के समय में साहित्य में लैंगिक समानता, पर्यावरण अधिकार, अल्पसंख्यक अधिकार आदि मुद्दे प्रमुखता से उभर रहे हैं। LGBTQ+ साहित्य और नारीवादी

लेखन मानवाधिकार विमर्श को और व्यापक बना रहे हैं।

साहित्य मानवाधिकारों को जीवंत अनुभव और अभिव्यक्ति देता है, जबकि मानवाधिकार साहित्य को नैतिक दिशा और उद्देश्य प्रदान करते हैं। दोनों मिलकर एक अधिक न्यायपूर्ण, समान और मानवीय समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

चयनित कविताओं में मानवाधिकार चेतना, प्रतिरोध और समकालीन संवेदनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन के लिए धर्मेश द्वारा रचित 'प्रेम के दस्तावेजों में', कुमार अम्बुज कृत 'यदि तुम नहीं माँगोगे न्याय'' तथा जसिंता केरकेट्टा द्वारा रचित 'सभ्यताओं के मरने की बारी'' आदि कविताएँ ली हैं।

प्रस्तुत कविता 'प्रेम के दस्तावेजों में'' प्रेम की अभिव्यक्ति को एक मूलभूत मानवाधिकार के रूप में सामने लाती है। सामान्यतः समाज में प्रेम को केवल स्त्री-पुरुष के संबंधों तक सीमित करके देखा गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि समाज में लैंगिक विविधता मौजूद है, जिसमें LGBTQ+ समुदाय भी शामिल है।जिस प्रकार स्त्री और पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हैं, उसी प्रकार LGBTQ+ समुदाय को भी अपने अस्तित्व, अस्मिता और प्रेम की अभिव्यक्ति का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। परंतु सामाजिक संरचना और रूढ़िवादी मानसिकता के कारण इन्हें लंबे समय तक मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया। समय के साथ इस समुदाय ने संघर्ष और आंदोलनों के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई है, फिर भी विश्व के अनेक समाजों में आज भी इन्हें समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

प्रेम मनुष्य का स्वाभाविक और अनिवार्य भाव है। यह केवल एक निजी अनुभव नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व की मूल शर्त है। इसके बावजूद भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष के बीच भी प्रेम की अभिव्यक्ति को कई बार संदेह या नियंत्रण की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसे में यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि लैंगिक अल्पसंख्यकों की प्रेमाभिव्यक्ति को समाज किस हद तक स्वीकार करता है।

कविता इस विडंबना को उजागर करती है कि एक पुरुष का दूसरे पुरुष से, एक स्त्री का दूसरी स्त्री से, या ट्रांसजेंडर व्यक्तियों का किसी भी लिंग के साथ प्रेम–इन सभी को समाज ने अक्सर अस्वीकार कर दिया है। इस प्रकार, प्रेम जैसे मौलिक मानवीय अधिकार से उन्हें वंचित किया गया है-

"प्रेम के दस्तावेजों में बाकी है
अभी लिखी जानी दास्ताँ उन लोगों की
जिनके जन्म ने निर्धारित किया
उनके मनुष्य होने से पहले
उनका मर्द या औरत होना"[6]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि यह स्पष्ट करते हैं कि समाज व्यक्ति की पहचान को उसके "मनुष्य होने" से पहले ही लिंग के आधार पर निर्धारित कर देता है। यह स्थिति लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए एक गहरे अस्तित्वगत संकट को जन्म देती है, जहाँ उन्हें अपनी अस्मिता के लिए अपने ही शरीर और सामाजिक संरचनाओं से संघर्ष करना पड़ता है-

"और उन्हें लड़ना पड़ा
अपने ही शरीरों से
अपनी अस्मिताओं के लिए"[7]

यह संघर्ष केवल पहचान का ही नहीं, बल्कि अपने भावों–विशेषकर प्रेम–की अभिव्यक्ति का भी है। LGBTQ+ समुदाय को अक्सर अपने प्रेम को व्यक्त करने का अधिकार भी नहीं मिलता, जो कि किसी भी मनुष्य का बुनियादी अधिकार होना चाहिए।

"लिखे जाएँगे किस्से उन लड़कियों के
जिन्होंने अकूत प्रेम किया लड़कियों से
लड़कों से और उनसे भी जिन्होंने
नकारा ये दोनों होना"[8]

इन पंक्तियों में कवि उन सभी लोगों की कथा को सामने लाने की बात करते हैं, जिन्होंने पारंपरिक लैंगिक सीमाओं से परे जाकर प्रेम किया। यह कविता स्पष्ट रूप से यह संदेश देती है कि प्रेम किसी एक संरचना या परिभाषा में सीमित नहीं किया जा सकता।

अंततः यह कहा जा सकता है कि "प्रेम के दस्तावेजों में" केवल एक काव्य रचना नहीं, बल्कि एक सामाजिक दस्तावेज़ है, जो यह स्थापित करती है कि प्रेम और

ISSN: 2582 - 2594

अस्तित्व–दोनों ही प्रत्येक मनुष्य के बुनियादी मानवाधिकार हैं। LGBTQ+ समुदाय का संघर्ष इसी अधिकार की पुनर्स्थापना के लिए है, ताकि वे भी सम्मानपूर्वक जी सकें और अपने प्रेम को निर्भय होकर अभिव्यक्त कर सकें।

कुमार अम्बुज की कविता 'यदि तुम नहीं माँगोगे न्याय' में अधिकारों की माँग, न्याय की स्थापना तथा उसके लिए आवश्यक संघर्ष की गहरी व्याख्या की गई है। कवि के अनुसार न्याय और अधिकार मनुष्य के जीवन की बुनियादी आवश्यकताएँ हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निरंतर आवाज़ उठानी पड़ती है। संसार में समस्याओं और विषयों की कोई कमी नहीं है, किंतु मनुष्य की मूल समस्याओं और उनके समाधान के लिए संघर्ष करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। कवि का मानना है कि अधिकार और न्याय बिना माँगे प्राप्त नहीं होते; इसके लिए बार-बार संघर्ष करना आवश्यक है–

"जो बार-बार माँगने से ही
मिल पाता है थोड़ा-बहुत
और न माँगने से कुछ नहीं,
सिर्फ अन्याय मिलता है।"[9]

कवि यह स्पष्ट करते हैं कि न्याय और अधिकारों की प्राप्ति आसान नहीं होती। इसके लिए समय, धैर्य और निरंतर संघर्ष की आवश्यकता होती है। भारत का स्वतंत्रता संग्राम, मौलिक अधिकारों की स्थापना, दलित अधिकार आंदोलन, स्त्री-अधिकार आंदोलन, LGBTQ+ समुदाय के मानवाधिकारों की लड़ाई तथा मजदूर आंदोलनों जैसे अनेक संघर्ष इसके उदाहरण हैं। इन सभी आंदोलनों ने यह सिद्ध किया है कि अधिकार केवल संघर्ष और प्रतिरोध के माध्यम से ही प्राप्त किए जा सकते हैं।

कविता में कवि यह भी रेखांकित करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और हकों की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। अपने ऊपर होने वाले अन्याय और अत्याचार को पहचानकर उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना तथा अपने अधिकारों की माँग करना भी एक प्रकार की राजनीतिक चेतना है। पीड़ित वर्ग को स्वयं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा, क्योंकि यदि वे स्वयं आवाज़ नहीं उठाएँगे, तो कोई शक्तिशाली व्यक्ति उनके नाम पर अपने हितों की राजनीति करेगा–

"मुश्किल यह भी है कि
यदि तुम नहीं माँगोगे
तो वह समर्थ आदमी
अपने लिए माँगेगा न्याय।"[10]

कवि यहाँ न्याय और अधिकार की राजनीति के दो रूपों की ओर संकेत करते हैं–सकारात्मक और नकारात्मक। जब पीड़ित वर्ग अपने अधिकारों और न्याय के लिए संघर्ष करता है, तब वह एक सकारात्मक प्रक्रिया होती है। किंतु जब कोई शक्तिशाली, अमीर या सत्ताधारी वर्ग न्याय की गुहार लगाता है, तब उसके पीछे प्रायः व्यापक स्वार्थ और सत्ता की राजनीति छिपी होती है। कवि इस संदर्भ में वैश्विक राजनीति की ओर भी संकेत करते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण देते हुए कहा जा सकता है कि विभिन्न समयों में उसने अनेक देशों में सैन्य हस्तक्षेप और युद्ध किए हैं। वियतनाम युद्ध, इराक युद्ध, अफ़ग़ानिस्तान युद्ध, लीबिया में NATO हस्तक्षेप तथा कोरियाई युद्ध जैसी घटनाओं ने अनेक देशों में राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विघटन और भारी जनहानि उत्पन्न की। कई बार मानवाधिकार, लोकतंत्र और शांति की स्थापना के नाम पर शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे देशों के संसाधनों, राजनीति और अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करते हैं। कवि के अनुसार यह स्थिति न्याय के नाम पर व्यापक अन्याय की ओर संकेत करती है-

"कि जब कोई शक्तिशाली या अमीर
या सत्ताधारी लगाता है न्याय की गुहार
तो दरअसल वह एक वृहत्, ग्लोबल
और विराट अन्याय के लिए ही
याचिका लगा रहा होता है।"[11]

इस प्रकार, यह कविता न्याय, अधिकार और संघर्ष के गहरे संबंध को उजागर करती है। कवि का संदेश स्पष्ट है कि अधिकार तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब पीड़ित और वंचित वर्ग स्वयं जागरूक होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करे। यह कविता सामाजिक चेतना, राजनीतिक समझ और मानवीय अधिकारों के प्रति

ISSN: 2582 - 2594

सजगता का महत्वपूर्ण संदेश देती है।

जसिंता केरकेट्टा की कविता 'सभ्यताओं के मरने की बारी' का मूल बिंदु 'जीने का अधिकार' है। कविता में भूमंडलीकरण, पूँजीवाद और उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा प्रकृति तथा मानव जीवन के निरंतर शोषण को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कवयित्री यह स्पष्ट करती हैं कि प्रकृति का विनाश केवल पर्यावरणीय संकट नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और सभ्यता के अस्तित्व पर मंडराता हुआ खतरा है।

प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने आदिवासी जनजीवन पर होने वाले बहुआयामी शोषण को केंद्र में रखा है। भारत के आदिवासी क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बहुराष्ट्रीय कंपनियों, कॉरपोरेट शक्तियों तथा सरकारी तंत्रों की मिलीभगत से किस प्रकार किया जा रहा है, इसका संवेदनशील चित्रण कविता में मिलता है। यह शोषण केवल जंगल, नदी और भूमि तक सीमित नहीं है, बल्कि वहाँ रहने वाले समुदायों की संस्कृति, पहचान और अस्तित्व को भी नष्ट कर रहा है।

कविता में 'नदी' एक महत्त्वपूर्ण बिंब और प्रतीक के रूप में उभरती है। नदी यहाँ केवल जलधारा नहीं, बल्कि एक समाज, एक संस्कृति और एक सभ्यता का प्रतीक है। नदी में ऑक्सीजन की कमी, उसका प्रदूषित और मृत हो जाना, वस्तुतः उस सभ्यता के अंत का संकेत है जो उसके किनारे विकसित हुई थी। कवयित्री लिखती हैं–

> "ऑक्सीजन की कमी से
> बहुत-सी नदियाँ मर गईं
> पर किसी ने ध्यान नहीं दिया
> कि उनकी लाशें तैर रही हैं
> मरे हुए पानी में अब भी।"[12]

इन पंक्तियों में 'मरी हुई नदियाँ' केवल पर्यावरणीय विनाश का संकेत नहीं हैं, बल्कि वे आदिवासी समाज और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण का भी प्रतीक हैं। जब नदियाँ मरती हैं, तब उनके साथ मनुष्य का जीवन, उसकी संस्कृति और सभ्यता भी समाप्त होने लगती है। कवयित्री प्रकृति और मनुष्य के गहरे संबंध को रेखांकित करते हुए बताती हैं कि मानव सभ्यता का विकास सदैव नदियों के किनारे हुआ है; इसलिए नदियों का विनाश अंततः सभ्यताओं के विनाश में परिवर्तित हो जाता है।

कविता की ये पंक्तियाँ इस सत्य को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करती हैं–

"एक दिन जब सारी नदियाँ
मर जाएँगी ऑक्सीजन की कमी से
तब मरी हुई नदियों में तैरती मिलेंगी
सभ्यताओं की लाशें भी।
नदियाँ ही जानती हैं
उनके मरने के बाद आती है
सभ्यताओं के मरने की बारी।"[13]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री आधुनिक विकास मॉडल की अमानवीयता और विनाशकारी प्रवृत्तियों पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। कविता यह संदेश देती है कि प्रकृति का संरक्षण केवल पर्यावरण की रक्षा नहीं, बल्कि मानव सभ्यता और सांस्कृतिक अस्तित्व की रक्षा भी है।

भारत में अनेक पारिस्थितिक आंदोलनों ने पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ सामाजिक न्याय और स्थानीय समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए आवाज उठाई है। प्रस्तुत कविता भी उसी चेतना को आगे बढ़ाती है। कॉरपोरेट शक्तियों द्वारा आदिवासी इलाकों में प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और उससे प्रभावित आदिवासी जनजीवन की त्रासदी ही इस कविता का मूल मर्म है।

निष्कर्ष

मानवाधिकार केवल कानूनी या संवैधानिक अवधारणा नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा और अस्तित्व की आधारशिला हैं। साहित्य इन अधिकारों को संवेदना, अनुभव और संघर्ष के स्तर पर जीवंत बनाता है। प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट होता है कि साहित्य समाज के वंचित, शोषित और हाशिए पर स्थित समुदायों की आवाज़ बनकर मानवाधिकार चेतना को सशक्त करता है।

धर्मेश की कविता 'प्रेम के दस्तावेजों में' प्रेम और लैंगिक अस्मिता को मानवाधिकार के रूप में स्थापित करती है। कुमार अम्बुज की कविता 'यदि तुम नहीं माँगोगे न्याय' अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष और राजनीतिक चेतना की

 ISSN: 2582 - 2594

आवश्यकता को रेखांकित करती है। वहीं जसिंता केरकेट्टा की कविता 'सभ्यताओं के मरने की बारी' पर्यावरण विनाश, आदिवासी जीवन और सभ्यता के संकट को मानवाधिकार के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार साहित्य और मानवाधिकार एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्य मानवाधिकारों को सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना से जोड़ता है, जबकि मानवाधिकार साहित्य को नैतिक दिशा प्रदान करते हैं। दोनों मिलकर एक अधिक न्यायपूर्ण, समानतामूलक और मानवीय समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

References / संदर्भ

1. https://www.un.org
2. प्रेमचन्द - मानसरोवर (कहानी संग्रह).
3. महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ., अमृता प्रीतम - पिंजर.
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि - जूठन.
5. हरिशंकर परसाई - व्यंग्य रचनाएँ, गजानन माधव मुक्तिबोध - अंधेरे में.
6. धर्मेश - प्रेम के दस्तावेजों में - पृ. सं. 25, हिन्दी कविता में सामाजिक सरोकार, संपादक - डॉ. सिन्धु एस. एल., डॉ. सौम्या सी. एस., डॉ. रमीष एन. - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 2024.
7. वहीं
8. वहीं
9. कुमार अम्बुज - यदि तुम नहीं माँगोगे न्याय - पृ. सं. 27, हिन्दी कविता में सामाजिक सरोकार, संपादक - डॉ. सिन्धु एस. एल., डॉ. सौम्या सी. एस., डॉ. रमीष एन. - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 2024.
10. वहीं
11. वहीं
12. जसिंता केरकेट्टा - सभ्यताओं के मरने की बारी - पृ. सं 30, हिन्दी कविता में सामाजिक सरोकार, संपादक - डॉ. सिन्धु एस. एल., डॉ. सौम्या सी. एस., डॉ. रमीष एन. - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 2024.
13. वहीं